Only once Thakur Keshavchandra Ji has addressed a public gathering.

Venue : Baripada (Orrisa, India)
Date : Jan 2000
Language : Oriya

- Its Video link to this event is being shared. Though the recording is not of very good quality yet it gives a fairly good idea about how the event unfolded and comprises of :
    - Opening ceremony.
    - Month long sermons by various religious sects.
    - Procession carrying Shri Paduka to the venue & its pooja.
    - Thakur Ji reaching the venue.
    - Question answer session.
    - Commendation certificates to all participants.

- The Audio link contains the complete talk.

- The translated text of the talk in Hindi language is appended below.

ॐ नमों भगवते यदुनन्दनाय सुकान्तिसुताय केशवचन्द्राय !

ॐ दीनधरा दष्कृतिभार मुक्तय तप्तहृदय वाष्पनिरुद्ध नेत्र
आवायतं युगपुरुषं मात्यमं श्री केशवतं करुणा प्रपते ।

युगानुसार मर्त्यलीला की सत्यता व मर्यादा की रक्षा करते हुए सुरजनों द्वारा वन्दित, मुनिजनों द्वारा सेवित एवं भक्तगणों द्वारा छन्दित भक्तवत्सल भावग्राही श्रीमन्नारायण पुनः एक बार नरशरीर धारण कर धराधाम पर आविर्भूत हुए हैं। गुप्तलीला द्वारा सुप्त रहने की छलना करते हुए स्वर्णक्षेत्र, माहांगा में युग निर्यास सूत्र के निर्माण में गोलोकाधिपति आज व्यस्त हैं। अपने गोपनीय अभिसार के दृढ़ वलय से कुछ क्षणों के लिए वारिपदा की सद्भावना समिति के पूजनीय भक्तवृन्द ठाकुर श्रीकेशवचन्द्रजी को आमन्त्रित कर खुले मंच पर ले आए थे। प्रेममय श्रीश्रीश्री ठाकुरजी ने दीर्घ 45 वर्षों की नीरवता के पश्चात् पहली बार विश्ववासियों के मन से कुछ द्वन्द्वों के समाधान करने के उद्देश्य से अध्यात्म के इतिहास में एक नूतन अध्याय की रचना की थी। एक प्रश्नोत्तर कार्यक्रम के माध्यम से परिषद के सम्माननीय तत्त्वाचार्य श्री चन्द्रशेखर राउतजी की सहायता से उनके श्रीरंगा अधर से परमार्थ तत्त्वज्ञान कुसुम की कुछ पंखुड़ियाँ झड़ पड़ीं थी। उनकी मानस संतान ने उन्हीं पंखुड़ियों को समेट कर एक माला में पिरोया है और इस माला को भक्तजनों के हृदय व मन में डालने का प्रयास किया है।

यह "सद्भावना मण्डप" उड़ीसा में पहली बार आयोजित हुआ है। यह समिति गत 20 वर्षों से

"सेवक समिति" के नाम से परिचित है। गत 20 वर्षों से इस वारिपदा शहर के लिए श्रीश्रीश्री ठाकुरजी की एक अद्‌भुत प्रेरणा रही है, जिसने हमें अनुप्राणित किया है। इसके 20 वर्ष सम्पूर्ण होने के साथ-साथ विंश शताब्दी भी शेष हुई है और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दिन से ही यह एक मास व्यापी मानसिक महोत्सव "विश्व मानवधर्म सम्मिलनी" आरम्भ हुई है। इस अन्तरात्मा ने जिनकी सदिच्छा एवं प्रेरणा से आन्दोलित व अनुप्रेरित होकर ऐसी एक वास्तविक आवश्यकता के निर्यास को कार्यकारी किया है, समग्र मानव जाति तथा हम सभी विश्ववासी उन्हीं परमपुरुष परमप्रेममय ठाकुर श्रीकेशवचन्द्र गुरुस्वामीजी को आत्मिक प्रणाम करते हैं।

श्रीश्री ठाकुरजी ! आप भक्त के भगवान् हैं। इसलिए आप रह नहीं पाए हैं, हमारे भाव की डोरी से आप खिंचे चले आए हैं। **विवर्तन की प्रक्रिया में जब युग की चिन्ताधारा चरम पर्याय में उपनीत होती है, उस समय स्वयं स्रष्टा नर विग्रह में अवतरित होकर आगमिक महाविपत्ति से उद्धार पाने के पथ प्रदर्शित करते हैं।** इसी क्रम में "सद्‌भावना मण्डप" की आवश्यकता एवं वास्तव में मानवधर्मी इस महोत्सव की सात मुख्य विषयवस्तुओं के माध्यम से स्वयं श्रीश्रीश्री ठाकुरजी स्वेच्छा से आशीर्वाद प्रदान करने हेतु इस मंच पर उपस्थित हुए हैं। यथा :-

1 - मानव जीवन व मानव शरीर श्रेष्ठ क्यों है ?
2 - मानव जीवन का चरम लक्ष्य क्या है ?
3 - सत्संग को मानसिक महोत्सव क्यों कहा जाता है ?
4 - गृहस्थ धर्म का पालन किस प्रकार किया जाता है ?
5 - क्या करने से महाविपत्ति में भी शरणागति मिलती है ?
6 - द्वैत और अद्वैतवाद के तत्त्वों के प्रचार व प्रसार में "वसुधैव कुटुंबकम्" सद्‌भावना की आवश्यकता क्यों है ? एवं,
7 - भगवद् कृपा प्राप्ति के सरल व सहज उपाय क्या हैं ?

हरिबोल... हरिबोल .... हरिबोल ....
परमप्रेममय ठाकुर श्रीश्रीश्री केशवचन्द्रजी की ... जय
परमप्रेममय ठाकुर श्रीश्रीश्री केशवचन्द्रजी की ... जय
विश्वपिता ठाकुर श्रीश्रीश्री केशवचन्द्रजी की ... जय

जिज्ञासु - इन विश्ववासियों की ओर से मुझे एक जिज्ञासु के रूप में आपके सम्मुख उपस्थापित किया गया है। एक जिज्ञासु के धर्मानुयायी सर्वप्रथम मैं आपसे एक प्रश्न निवेदन करना चाहता हूँ। दयापूर्वक हमारी जिज्ञासा पूर्ण करने हेतु आपसे प्रार्थना भी करता हूँ, "शरणागत किंकर भित्त मने। गुरुदेव दया करो दीन जने ॥"

प्रभु ! आपने इस सृष्टि में 45 वर्षों पूर्व जन्म ग्रहण किया है। आपसे पहले भी इस धरती पर अनेकों ने जन्म लिया है। इस धराधाम पर जो भी जन्म लेते हैं, सभी जीव की भाँति रह कर श्रीमद्भगवद् गीता के उपदेशानुसार ईश्वर के दरबार में तथा ईश्वर के निकट समर्पित होते हैं।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि, हमारे पितृपैतामह, पूर्वपुरुष, गुरुदेवगण यह नीति

शिक्षा दे गए हैं कि, जो भी जीव धराधाम पर जन्म लेंगे सभी शिष्य की भाँति रह कर उन्हीं श्रीकृष्ण की शरण में जाएँगे। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में भी यह बात कही थी कि, "मामेकं शरणं व्रज"। वे ही एक मात्र शरण रक्षणकारी हैं, उनके अतिरिक्त अन्यत्र कोई नहीं।

जो भी जीव धराधाम पर जन्म लेते हैं, वह कभी भी इस विश्व का गुरु दायित्व ग्रहण करने के लिए प्रयास नहीं करते। परन्तु स्वयं एक शिष्य की भाँति न रहते हुए आपने इस विश्व का गुरु दायित्व ग्रहण करने का संकल्प क्यों किया ? अतः हम विश्ववासी आपका परिचय जानना चाहते हैं। इस सृष्टि में आपका परिचय क्या है ? आपको यह गुरुज्ञान व चैतन्यता कहाँ से प्राप्त हुई ?

श्रीठाकुरजी - अव्यक्त जब व्यक्त होता है, तब उसे व्यक्त ब्रह्म कहा जाता है। तुम सभी के भीतर वही ब्रह्म है और आत्मा की सत्ता भी। पहले भी वक्ताओं के मुख से एवं प्रायः सभी के मुख से "आत्मा और ब्रह्म" का उच्चारण करते तुमने सुना होगा। परन्तु "आत्मा और ब्रह्म" के स्वरूप तथा वर्ण के बारे में सम्भवतः किसी की धारणा नहीं होगी।

जिज्ञासु - हाँ। इस बारे में हमारी कोई धारणा नहीं है।

श्रीठाकुरजी - पूर्व से महामनीषीगण भी कह गए हैं। उनकी अनुभूति थी; चेत था और हेतु भी था। साधारण जीव अचेतन और अहैतुक कुण्डली के कारण बद्ध जीव बन कर धराधाम पर जन्म ग्रहण करता है। अतः चैतन्य शक्ति उसके भीतर सुप्तावस्था में होती है।

जिज्ञासु - आप हमारे बारे में कह रहे हैं ?

श्रीठाकुरजी - हाँ। सबके बारे में कहा जा रहा है। तुम जो मुझसे संकल्प करने की बात कह रहे हो, यह संकल्प करना क्या है ? अव्यक्त मण्डल की चैतन्यता, हेतु, चित्त की जाग्रतावस्था हमारे भीतर परिस्फुट हुई है। जो ज्ञान परिस्फुट हुआ है, वही ज्ञान हम वितरण कर रहे हैं। तुम मुझसे जो पूछ रहे हो, वह आग्रह पूर्वक कह रहा हूँ। इसलिए तुम जो संकल्प करने की बात कर रहे हो, यह संकल्प करना क्या है ?

जिज्ञासु - तो आप यह कहना चाहते हैं कि, यह गुरुज्ञान और गुरु दायित्व निर्वाह करने का हेतु और चेतना आपके भीतर परिस्फुट हुई है। इसलिए आपने यह दायित्व ग्रहण किया है। वही चेतना हम साधारण जीवों के भीतर परिस्फुट नहीं होती, इसलिए हम वह दायित्व ग्रहण करने के लिए इच्छा प्रकट नहीं करते। यह पूर्ण चैतन्य और गुरु दायित्व निर्वाह करने की चेतना आपके भीतर किस प्रकार से परिस्फुट हुई ? आपने क्या कुछ ...

श्रीठाकुरजी - अव्यक्त मण्डल। जिसको हम अव्यक्त कहते हैं। निराकार कहते हैं। परमब्रह्म कहते हैं। अनादि मण्डल कहते हैं। और एक बात, मैं वक्ता नहीं जोकि अलंकृत करके कह सकूँ और श्रोताओं के मन को अतिरंजित कर सकूँ। वक्तागण मन में दुःख प्रकट न करें। वक्ता मूलपिण्ड को धरे विभिन्न बातें रंजित कर जाते हैं। इसलिए श्रोताओं को वह सुन्दर लगता

है। मेरी बातें सुन्दर नहीं लगेंगी। जिस प्रकार सोने से विभिन्न अलंकार बनाकर कानों में तथा गले में पहनने से हमारा शरीर अतिरंजित होता है, सुन्दर दिखाई देता है; उसी प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान का स्वरूप भी ऐसा ही है। अतः तुम जो प्रश्न पूछ रहे हो, मैं उसका उत्तर दूँगा। जितना जानता हूँ, उतना कहूँगा। यदि तुम्हारे भीतर बोधगम्य नहीं हुआ तो ?

जिज्ञासु -हमारे भीतर ?

श्रीठाकुरजी-हाँ। एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दोगे। मैंने मिठाई खायी है। मैं उसकी रूपरेखा दे सकता हूँ। तुम मिठाई खाते हो, यह जानते हो। क्या तुमने कभी इसकी अनुभूति नहीं की ?

जिज्ञासु -नहीं। हमने यह अनुभूति नहीं की है। हमारे भीतर शास्त्र का ज्ञान है। हम भगवान्-भगवान् तो कहते हैं, परन्तु हमने कभी भगवान् की उपलब्धि नहीं की है। महाजन गतस्य पंथा। पूर्वजों ने कहा है, इसलिए हम उसे स्वीकार करते हैं। परन्तु उसके प्रति हमारी कोई अनुभूति नहीं है। अतः पूर्ण चैतन्य तथा गुरुज्ञान की आपने जो अनुभूति की, वह आपको कैसे प्राप्त हुई ? जिस प्रकार आपने इस धराधाम पर एक जीव के रूप में जन्म लिया है, जो हम देख रहे हैं, उसी प्रकार हम सबने भी इसी धराधाम पर एक जीव के रूप में जन्म लिया है। हम तो वह प्राप्त नहीं कर सके। परन्तु आपने वह प्राप्त किया है। आपको किस प्रकार और कब वह प्राप्त हुए ?

मेरे कहने का उद्देश्य यह है कि, आपने वेदाध्ययन कर अथवा योग कर अथवा तपस्या कर अथवा शास्त्राध्ययन कर अथवा इस प्रकार के कौन से उपाय से और कब वह आपको प्राप्त हुए ?

श्रीठाकुरजी-वेद, शास्त्र और पुराण। इन सबका अध्ययन नहीं किया है।

जिज्ञासु -यदि नहीं किया है, तब आपको चेतना मिली कैसे ?

श्रीठाकुरजी-स्वतः मेरी चेतना सृष्टि हुई है। जिसे अव्यक्त ब्रह्म कहते हैं, उस अव्यक्त ब्रह्म के व्यक्त ज्ञान का प्रकाश हमारे भीतर स्वतः हुआ है।

जिज्ञासु -आपके भीतर इस ज्ञान का प्रकाश कब हुआ ? कितने वर्षों में अर्थात् 20 साल में अथवा 5 साल में अथवा 2 साल में अथवा इस इहधाम में आविर्भूत होने के पश्चात् आपके भीतर इस ज्ञान का प्रकाश हुआ है ?

श्रीठाकुरजी-साधारण जीव जब जन्म ग्रहण करता है, तब वह अचेतन होकर जन्म ग्रहण करता है। उसमें हेतु ज्ञान नहीं होता। पिण्ड के भीतर सुप्तावस्था में होता है। सुप्तावस्था में रहने का कारण यह है कि चित्त, चेत, चैतन्य और हेतु, ये सभी ब्रह्म(आत्मा) के चतुष्पार्श्व में जागृतिक रक्ष्य की भाँति होते हैं।

प्रकृति के बारे में तो जानते होगे। जिस प्रकृति के वशीभूत होकर तुम लोग विषय संसार के

भोग कार्यों में लिप्त रहते हो। जिसके फलस्वरूप भगवत् सत्ता की उपलब्धि नहीं कर पाते और भगवत् का सान्निध्य भी लाभ नहीं कर पाते। वह माया चित्त, चेत, चैतन्य और हेतु के चतुष्पार्श्व में घिरी हुई है। मायाग्रस्त चेत, स्थूल चेत, मायाग्रस्त चैतन्य, स्थूल चैतन्य; पिण्ड में स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन प्रकार के चैतन्य कार्य कर रहे हैं। साधारण जीव के भीतर स्थूल चित्त, चैतन्य और बुद्धि है। समाज में वर्तमान जो बुद्धि कार्य कर रही है, धीरे-धीरे जब वह जाग्रतावस्था में आती है, तब वह मोह-माया की ओर गति करती है। मोह-माया के भीतर बिजेन्द्रिय और सत्येन्द्रिय, ये दो द्वार अथवा पथ होते हैं। मन को किसी भी सुन्दरता अथवा सुन्दर वस्तु की ओर आकर्षित करना बिजेन्द्रिय वृत्ति का काम है। सुन्दर फूल, स्वादिष्ट खाद्य इत्यादि। यह वृत्ति भगवत् सान्निध्य के लिए जीव का गतिरोध करती है।

जीव इसी प्रकार अपनी गतानुगतिक क्रिया करते हुए देहत्याग करता है। पुनः कर्मानुयायी जन्म भी लेता है। जो जीव माता-पिता के संस्कार एवं प्रारब्ध कर्म के फलस्वरूप जन्म लेता है, उसके पिण्ड में चेत का कुर्णाली कोष हरिद्रा वर्ण धारण करता है। वह कोष योगी के लिए धवल एवं साधारण जीव के लिए हरिद्रा वर्ण धारण करता है।

साधारण जीव का हरिद्रा वर्ण धारण करने का उद्देश्य यह है कि, भगवान् मायाबद्ध करके जीव को भेजते हैं, ताकि जीव अपना कर्मयोग करते हुए भगवत् का सान्निध्य लाभ कर सके। सभी यही चाहते हैं कि, सहसा कोई उपलब्धि हो जाए। परन्तु सहसा कोई भी उपलब्धि करना सम्भव नहीं। कुछ-न-कुछ कर्मयोग तो करना ही पड़ेगा।

जिज्ञासु - यदि कर्मयोग करना ही पड़ेगा, तब आपको यह चैतन्यता क्या किसी कर्मयोग के फलस्वरूप प्राप्त हुई है ? या इसके पीछे और कोई उपाय है ??

श्रीठाकुरजी - नहीं। कर्मयोग के फलस्वरूप यह चैतन्यता प्राप्त नहीं हुई है।

जिज्ञासु - यदि कर्मयोग के फलस्वरूप चैतन्यता प्राप्त नहीं हुई है, तब किस प्रकार और कब आपको यह चैतन्यता प्राप्त हुई ? यह चैतन्यता आपको कहाँ से प्राप्त हुई ?

जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द को कुछ दिन साधना करने के पश्चात् चैतन्यता प्राप्त हुई और वह समाज कल्याण के उद्देश्य से ज्ञान वितरण कर गए। इसी प्रकार भौतिक क्रिया, योग क्रिया, साधना प्रणाली, शास्त्राध्ययन अथवा वेदोक्त क्रिया के नियमानुसार आपको यह चैतन्यता प्राप्त हुई है ?

श्रीठाकुरजी - नहीं। ये सब कुछ नहीं किया है।

जिज्ञासु - कोई भी योग साधना आपने नहीं की है। जो भी जीव धराधाम पर जन्म लेता है, पूर्व वर्णनानुसार उसका कुर्णाली कोष हरिद्रा वर्ण धारण करने के कारण अचेतन होकर वह सांसारिक माया-मोह में पड़ता है। आपने जब इस धराधाम पर जन्म ग्रहण किया है, तब आपका भी वैसा ही होगा। परन्तु आप यह कह रहे हैं कि, किसी कर्मयोग तथा योग साधना

के फलस्वरूप आपको यह चैतन्यता व गुरुज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है।

साधारणतः किसी योगी को 20 वर्ष में यह ज्ञान प्राप्त होता है, तो किसी को 50 वर्ष में, और तो किसी-किसी को वार्द्धक्य के समय प्राप्त होता है। मेरे कहने का अर्थ यही है कि, कितने वर्षों में अर्थात् 20 वर्ष में अथवा 5 वर्ष में अथवा जन्म के समय अथवा जन्म से पूर्व जब मातृगर्भ में थे, क्या तब आपको यह चैतन्यता व गुरुज्ञान प्राप्त हुआ है ?

श्री ठाकुरजी - नहीं। उससे पहले प्राप्त हुआ है।

जिज्ञासु - यदि मातृगर्भ से पहले प्राप्त हुआ है अर्थात् जीव जब अव्यक्त से धराधाम पर आता है, वह विभिन्न मण्डल पार करते हुए आता है। मातृगर्भ में आते समय वह सप्तमण्डल अथवा सप्तलोक पार करते हुए आता है। आप जब अव्यक्त से आए हैं, सप्तलोक में यह चैतन्यता प्राप्त हुई है या उससे भी ऊर्ध्व से यह चैतन्यता प्राप्त हुई है ?

श्री ठाकुरजी - जो नित्य सिद्ध हैं, उन्हें मातृगर्भ में यह चैतन्यता प्राप्त होती है। 64 प्रकार के नित्य सिद्ध हैं। हम यह जान नहीं सकते कि, कौन नित्य सिद्ध हैं और कौन नहीं। यह नित्य सिद्ध मातृगर्भ में गैरिक वर्ण धारण कर रहे होते हैं। उनके चैतन्य, चित्त और हेतु की क्रिया गोलाकार शिरा-प्रशिरा में धारण करती है।

माँ जब निद्रितावस्था में होती है, उस अवस्था में गोलाकार शिरा-प्रशिरा के माध्यम से अव्यक्त ब्रह्म चक्षु द्वारा माँ के मुखमण्डल में एक शून्य सत्ता का आलोक प्रदान करते हैं। माँ यह जान नहीं पाती। वह आलोक पिण्ड जरायु पर पड़ता है। जरायु में शिशु अचेतन अवस्था में होता है। यह आलोक पिण्ड पड़ने के पश्चात् शिशु मातृगर्भ में चेतन हो जाता है।

जिज्ञासु - आप यदि मातृगर्भ की चेतना के बारे में कह सकते हैं, तब इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि, आप उससे भी ऊर्ध्व से आए हैं। मातृगर्भ से पहले सप्तलोक आता है। इस सप्तलोक या ब्रह्मलोक से आपको यह चैतन्यता प्राप्त हुई है ?

श्री ठाकुरजी - ब्रह्मलोक की चेतना के बारे में तुम प्रश्न कर रहे हो। यदि सप्तलोक की चेतना के बारे में प्रश्न करते हो, तो भी कह सकता हूँ।

जिज्ञासु - यदि आप सप्तलोक की चेतना का वर्णन कर सकते हैं, तब इससे यही जान पड़ता है कि, आप उससे भी ऊर्ध्व से आए हैं।

श्री ठाकुरजी - सप्तलोक के एक-एक लोक से जो ज्ञान धराधाम पर विस्तृत हुआ है, वह ज्ञान मातृगर्भ के माध्यम से नित्य सिद्ध साधु प्राप्त करते हैं। परमब्रह्म ने सृष्टि की रचना कर दी। दो भाग हुए "प्रकृति और पुरुष"। उन्होंने चिन्ता की, सृष्टि की कौन-कौन सी आवश्यकताएँ हैं ? सृष्टि को विज्ञान की आवश्यकता है। विज्ञान मण्डल के जितने ज्ञान हैं, वह ज्ञान उन्हीं नित्य सिद्ध साधुओं के द्वारा अवतरित कराते हैं।

जो चैतन्य मस्तिष्क में है, उसके सात(7) विभाग हैं। इन सात विभागों में से एक है अर्णाल चैतन्य एवं दूसरा है जागृति चैतन्य। ये दो विभाग विज्ञान कोष के रूप में रहे होते हैं।

मातृगर्भ में शिशु दश मास रह कर भूमिष्ठ होता है। नित्य सिद्ध साधु जब धीरे-धीरे चक्षु खोलकर देखता है, तब उसको सृष्टि का वर्ण हरिद्रा दिखाई देता है। साधारण जीवों को यह हरिद्रा वर्ण दिखाई नहीं देता। विज्ञानतत्त्व जो ज्ञानतत्त्व लिखेगा, उससे सृष्टि का वर्ण हरिद्रा दिखाई देगा।

सद्यजात शिशु जब क्रन्दन करता है, तब हम उसे कहाँ-कहाँ पुकारना कहते हैं। वह शिशु (नित्य सिद्ध) इस प्रकार क्रन्दन नहीं करता। इस प्रकार का क्रन्दन उसका सप्ताह में एक बार उत्पन्न होता है। उसका वह शब्द वाम और दक्षिण होकर निकलता है। सूक्ष्म स्तर में अर्द्धिक स्नायु और वर्द्धिक स्नायु है। जब शिशु धीरे-धीरे बढ़ने लगता है, तब वह ज्ञान परिपक्व होने लगता है। ये दोनों स्नायु ज्ञान को परिपक्व करते हैं। यह सूक्ष्म स्तर में होता है। जब वह ज्ञान परिपक्व हो जाएगा, तब वह शिशु क्रन्दन करना बन्द कर देता है। इसके पश्चात् भौतिक जगत् की जो क्रिया है, वह दिखने लगती है। जैसे कि दुष्ट होना। कुछ दिन भौतिक जगत् की क्रियाएँ करने के पश्चात् उसमें जो विज्ञान मण्डल के कोष हैं, वह गैरिक वर्ण धारण करते हैं। जब गैरिक वर्ण धारण करते हैं, तब नित्य सिद्ध साधु वह समस्त ज्ञानतत्त्व लिखना आरम्भ करता है। इसी प्रकार प्रभु उसके माध्यम से धीरे-धीरे ज्ञान धराधाम पर अवतरित कराते हैं। उनके प्रति प्रभु का इंगित होता है।

जिज्ञासु - यदि आप सप्तलोक का वर्णन कर सकते हैं, तब निश्चित रूप से सप्तलोक के ऊर्ध्व से आप आए होंगे। अन्यथा आप सप्तलोक का वर्णन नहीं कर सकते। सप्तलोक के ऊर्ध्व में अव्यक्त मण्डल है। क्या वहाँ से आपको यह चैतन्यता प्राप्त हुई है ? क्या आप वहाँ से आए हैं ??

श्री ठाकुरजी - तुम सदैव मेरा परिचय जानना चाहते हो। मैं अव्यक्त मण्डल के बारे में कह सकता हूँ।

जिज्ञासु - यदि आप अव्यक्त मण्डल के बारे में कह सकते हैं, तब आप वहाँ गए होंगे या वहाँ से आए होंगे। यदि आप अव्यक्त मण्डल गए हैं, तब आप धराधाम पर वापिस तो नहीं आते ? श्रीमद्भगवद् गीता में यह वर्णित है कि, जो मुझे एक बार प्राप्त कर लेता है, वह इस धराधाम पर वापिस नहीं आता। जिस प्रकार समुद्र में नमक का विलय हो जाता है, उसी प्रकार समस्त इच्छा और संकल्प जब अव्यक्त में जा मिलता है, तब वहाँ उसका विलय हो जाता है। इसी कारण वह पुनः धराधाम पर वापिस नहीं आता। आप यदि कर्मयोग साधना करके अव्यक्त गए होंगे, तब आपको पुनः धराधाम पर आना नहीं पड़ता। यदि अव्यक्त की इच्छा से आप आए होंगे, तब वह बात विलग है। इन दोनों बातों में से कौन सी है ?

श्री ठाकुरजी - (मंद-मंद हँसी मुख पर लिए) आप बड़ी-बड़ी बातें पूछ तो रहे हैं ...

जिज्ञासु - (हरिबोल ... हरिबोल ... हरिबोल ... गूंजते हुए) प्रभु ! बतायें, बतायें ...

श्री ठाकुरजी - कर्मयोग साधना करके कोई अव्यक्त मण्डल जा नहीं सकता। जीव सप्तलोक पर्यन्त भेद

करता है। सप्तलोक में वह जो ज्ञानतत्त्व उपलब्धि करता है, उसको वह धराधाम पर वितरण करता है। जिसने चाहा उसने वितरण किया। जिसने नहीं चाहा, स्वेच्छा से नहीं वह भगवत् की इच्छा से वितरण करेगा। प्रवचन में "भगवत् की इच्छा" कहते हुए सुना होगा। क्या है यह भगवत् की इच्छा ? जीव की चैतन्यता प्राप्ति के पश्चात् कुछ दिन व्यतीत हो जाएँगे। वह ब्रह्म के साथ सर्वदा युक्त होकर रहेगा। जीव ब्रह्म और परमब्रह्म। उसका शरीर होगा, परन्तु युक्त होकर रहेगा। युक्त रहते समय उसका शरीर नीलवर्ण धारण करता है और वह 12 अथवा 24 घण्टे तक ध्यानमग्न रहता है।

कुछ क्षणों पहले तुम लोग जो पूजा कर रहे थे, जिस प्रार्थना में बैठे थे, उसमें तुम्हारी अनुभूति क्या है ? तुम्हारी स्थिरता क्या है ??

जिज्ञासु -कुछ नहीं। हम तो केवल बुलाते हैं।

श्रीठाकुरजी-एक योगी जब चेतना प्राप्त कर लेता है, तब चेतना प्राप्त करने के पश्चात् वह नीलवर्ण धारण कर सदैव परमब्रह्म के साथ युक्त होकर रहता है। उस अवस्था में उसका बाह्य ज्ञान शून्य हो जाता है।

जिज्ञासु -मैं यह कहना चाहता हूँ कि, आप यदि अव्यक्त चेतना के भीतर रहते हैं और वह अपनी क्रिया करती है, तब आपका भी वैसा ही होना चाहिए। परन्तु आपका तो वैसा नहीं होता। अतः इससे यह प्रमाणित होता है कि, आपको किसी ने यहाँ भेजा है या तो स्वतः आप यहाँ आए हैं ?

आप **"चरम"** पुस्तिका के **"तुम्हारा कल्याण हो"** में यह लिखते हैं कि, **"तेरा मङ्गलाकांक्षी पिता"**। ऐसा साहस तो कोई नहीं कर सकता। चूँकि ईसामसीह (यीशु) ने कभी भी यह नहीं कहा कि, मैं परमपिता हूँ। उन्होंने यही कहा है कि, मैं परमपिता का प्रेरित दूत हूँ। मुहम्मद ने भी यही कहा है। जितने भी गुरु अंग हमें उपदेश देने के लिए इस धराधाम पर आए हैं, सभी ने इष्ट की ओर ही निर्देश दिया है। परन्तु आपने ऐसा किया है। आप लिखते हैं "पिता"। क्या आप ही वह बीजप्रदाता पिता हैं ?

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥14/3॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥14/4॥

(श्रीमद्भगवद् गीता)

श्रीमद्भगवद् गीता में यह वर्णित है, मैं प्रकृति को आश्रय करके देह धारण करता हूँ और मैं ही बीजप्रदाता पिता हूँ। **क्या आप ही वह बीजप्रदाता पिता हैं ??**

श्रीठाकुरजी-कुछ क्षण नीरव रहने के पश्चात् श्रीश्रीश्री ठाकुरजी ने उत्तर देते हुए कहा, **"चरम" में जो**

लिखा है, वह सत्य है ॥

(श्रीश्रीश्री ठाकुरजी के मुख से यह सुनने के पश्चात् हरिबोल ... के नाद से गगन पवन मुखरित हो रहा था। उपस्थित भक्तगण हर्षित हो रहे थे।)

जिज्ञासु -जब स्वयं बीजप्रदाता पिता हमारे गहन में उपस्थित हैं, मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ, "प्रभु ! इस सृष्टि में आज हम इतने अभाव में क्यों हैं ? हमारे भीतर भगवद् प्राप्ति का एवं विषयों का अभाव क्यों है ? इसके सम्बन्ध में तत्त्वद्रष्टा कह गए हैं, "छप्पन कोटि जीवों के लिए बावन कोटि भण्डार"। आप तो प्रभु स्वयं बीजप्रदाता पिता हैं। निश्चित रूप से आपने ही इस चार कोटि का अभाव रखा है। उस अभाव की पूर्ति के लिए हम आपस में मारधाड़, लड़ाई-झगड़ा, दंगा-फसाद कर रहे हैं, जोकि कल्पना से परे है।

आपने स्वीकार किया है कि, आप स्वयं बीजप्रदाता पिता हैं। आप बीज उत्पादन कर सकते हैं, हम साधारण प्राणी एक बीज से अनेक फल उत्पादन कर सकते हैं। परन्तु हममें से कोई बीज उत्पादन नहीं कर सकते। जो परमपिता हैं, बीजप्रदाता पिता हैं, जो सबको बीज प्रदान करते हैं, यदि आपके हाथों में वह सम्भव है तो आप हमें खुशी से वह प्रदान कर सकते हैं। आपके लिए किसी भी प्रकार की कोई असुविधा नहीं है। क्या आप हमारे इस अभाव को पूर्ण नहीं कर सकते ? आपकी क्षमता के भीतर यह है या नहीं ??

श्री ठाकुरजी -तुम जो बीजप्रदाता पिता कह रहे हो, क्या हम वह स्वीकार करते हैं ?

जिज्ञासु -आप स्वीकार नहीं करते ??

श्री ठाकुरजी -बीजप्रदाता। अव्यक्त में 108 प्रकार के बीजप्रदाता हैं। जब सृष्टि का निर्माण हुआ, उस समय परंब्रह्म ने चिन्ता की, जीवजगत् की सृष्टि कर देने से वह शरीर धारण करेंगे कैसे ? इस मर्त्यमण्डल में तुम जितने शस्य (तृण) जातीय (धान, मूँग, उड़द) देखते हो, वह सभी भिन्न-भिन्न प्रकार के एवं भिन्न-भिन्न नाम के हैं। जिस प्रकार भगवान् एक हैं और उनके बहु नाम, बहु पथ रखे गए हैं। उसी प्रकार उनके बीज अव्यक्त ब्रह्म में तीन वर्णों में है, यथा :- गैरिक, हरिद्रा एवं नीला। उसकी आकृति सेम के बीज की आकृति जैसी है। यदि वे चाहेंगे, तो क्या प्रत्यक्ष धान या मूँग आकाश से गिरा देंगे ? वह कैसे सम्भव होगा ?

सर्वप्रथम एक नित्य सिद्ध साधु को प्रकट कराएँगे। वह नित्य सिद्ध साधु जन्म लाभ कर किसी एक वस्तु को धरे उसी अव्यक्त मण्डल के मन्त्र एवं वर्ण को अपने मानसपट में लाएगा। मानसपट में वह मन्त्र चैतन्य होगा। मन्त्र चैतन्य होने से वह वस्तु स्वतः सिद्ध हो जाता है। सिद्ध हो जाने के पश्चात् वह धराधाम पर उतरता है और एक से अनेक हो जाता है।

जिज्ञासु -प्रभु ! एक विचारधारा हमारी समझ में नहीं आ रही है। अव्यक्त में बीजप्रदाता पिता के रूप में आपने जो द्वन्द्व उत्पन्न किया है, हम विश्ववासी उसका परिणाम धराधाम पर भोग कर रहे

हैं। यदि आप अनेक गुरुअंग धराधाम पर प्रेरित नहीं कर रहे होते तो, यहाँ अनेक संप्रदाय भी गठित नहीं हो रहे होते। अनेक संप्रदायों एवं उनके मध्य पारस्परिक मतभेद के कारण समाज में अशान्ति एवं सद्भावना में बाधाएँ उत्पन्न हो रही हैं।

विभिन्न गुरुअंग धराधाम पर प्रेरित कर सांप्रदायिकता आप उत्पन्न कराते हैं और उसका परिणाम भोगते हैं हम लोग। दुर्घटनाएँ, दंगा-फसाद, भूकंप इत्यादि करते हैं आप और उसका परिणाम भोगते हैं हम लोग।

इस धराधाम पर उन सभी गुरुअंगों के होते हुए स्वयं आपको यहाँ आने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? क्या यह कार्य उनके द्वारा सम्भव नहीं होता ? यदि एक ही गुरुअंग धराधाम पर प्रेरित करते तो क्या नहीं होता ??

श्रीठाकुरजी - (स्मिति पूर्वक) एक ही रंग के फूल खिलते तो क्या कोई असुविधा होती ??

जिज्ञासु - हमारे इस वारिपदा के मधुवन में एक घटना घटित हो चुकी है। वहाँ श्री निगमानन्द परमहंसजी के गुरुवाद के कार्य चल रहे थे। हम सभी गुरुदेव के शरणापन्न होने वहाँ गए थे। वहाँ भयावह अग्निकांड का सूत्रपात हुआ। उस अग्निकांड में जिन भाई-बहनों की मृत्यु हुई, वे कहाँ गए ? जो हमारे गुरुदेव हैं, जिनकी पूजा व आराधना हम लोग कर रहे थे, उस समय उन्होंने हमारी सहायता क्यों नहीं की ? इसी कारण ईश्वर के प्रति हमारी श्रद्धा और विश्वास कम हो जाता है। अतः हमारी विचारधारा यहाँ कार्य नहीं करती। आपकी अव्यक्त चेतना की विचारधारा इस विषय में क्या कहती है ?

श्रीठाकुरजी - ठाकुर श्री निगमानन्द परमहंसजी 84 मण्डल के नित्य सिद्ध साधु थे। उनकी आत्मा/ब्रह्म ने जब 84 मण्डल में शरीर धारण किया, उस समय 142 ज्ञानतत्त्व एवं विज्ञानतत्त्व के अधिकृत होकर उन्होंने ठाकुरत्व लाभ किया। अपने भक्तों को इस प्रकार का दण्ड विधान करना क्या उनका उद्देश्य था ?

जिज्ञासु - नहीं, नहीं। यह उनका उद्देश्य नहीं था।

श्रीठाकुरजी - स्रष्टा के तीन प्रकार के प्रलय हैं - बावल, पिनाक एवं रौद्र। सृष्टि के लिए बाढ़, भूकंप, वात्या पूर्ण मात्रा में घटित हो जाना, बावल प्रलय की क्रिया है। स्रष्टा की इच्छानुसार वह क्रिया धराधाम पर आती है। इसलिए ठाकुर निगमानन्द परमहंसजी की सम्मिलनी में जिन भक्तों ने देहान्त किया, तुम्हारी धारणा यह रहती है कि, हम तो श्रीठाकुरजी की शरण में आए, उनका ध्यान और धारणा अन्तः में की, उनके जो सत्संग चल रहे थे उस सत्संग में समस्त भक्तगणों का उद्धार हो गया है। यहाँ आपको अबोध्य हो रहा है।

जिज्ञासु - हाँ।

श्रीठाकुरजी - भगवान् हैं मङ्गलमय। भगवान् निगमानन्द जो निदर्शन देने आए थे, वह देकर चले गए।

उनकी स्मृति सहेजकर रखना हमारा कर्तव्य है। स्मृति सभा आयोजित हुई। स्मृति सभा में प्रलय की सृष्टि हुई। उस प्रलय का नाम "कर्णाल आग्नेयक" प्रलय है। इस प्रलय में जाने से जीव की आत्मा को ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो जाती है। ये सब अदृश्य हैं। उस आत्मा को ब्रह्मत्व की प्राप्ति हुई या नहीं, क्या तुम वह जान सके ?

जिज्ञासु -नहीं। हम तो वह जान नहीं सके।

श्री ठाकुरजी -इसलिए इन सब बातों पर तुम अविश्वास करने लगोगे। जब शरीर की दग्धावस्था हो जाती है, तब तुम अविश्वास करने लगते हो। श्रीरामचन्द्र की भुजाओं तले लक्ष्मण थे। लक्ष्मण का शक्तिभेद हुआ।

जिज्ञासु -उस समय श्रीरामचन्द्र नीरव थे।

श्री ठाकुरजी -नीरव थे। तुम्हारी यह धारणा हो रही होगी कि, श्रीरामचन्द्र की भुजाओं तले लक्ष्मण थे। लक्ष्मण का क्यों देहान्त हुआ ? श्रीरामचन्द्र की सहधर्मिणी का राक्षस ने हरण कर लिया। ये समस्त असम्भव सृष्टि में क्यों दिखाई देते थे ? इसलिए तुम अपनी भ्रांति दूर करो। ठाकुर श्री निगमानन्दजी की सम्मिलनी में जो भक्तगण गए, सब उन्हीं की इच्छा है। अपने भक्तों को उन्होंने अपने ब्रह्म मण्डल में लीन करा दिया। इसमें अविश्वास करने की कोई आवश्यकता नहीं।

जिज्ञासु -हम साधारण लोग हैं। हमारी दिव्य चेतना नहीं। हमारा पूर्ण चैतन्य उदय नहीं हुआ है। इसलिए हमने आनुमानिक सूत्र से कुछ कह दिया।

श्री ठाकुरजी -आनुमानिक सूत्र से नहीं। तुम्हारा शरीर एक मनुष्य का शरीर है। तुम्हारे शरीर पर मच्छर बैठता है तो, तुम उसे मार देते हो। क्या समझ कर तुम उसे मार देते हो ?

जिज्ञासु -शत्रु समझ कर।

श्री ठाकुरजी -नहीं। मच्छर तुम्हारे निकट एक क्षुद्र जीव जैसा दिखाई देता है। एक क्षुद्र जीव समझ कर तुम उसे मार देते हो। उस क्षुद्र जीव के भीतर वही ब्रह्म है या नहीं ?

जिज्ञासु -हाँ, उस जीव के भीतर ब्रह्म है।

श्री ठाकुरजी -तुम शरीर को मार देते हो। शरीर में स्थित ब्रह्म कहाँ गति करता है, क्या वह तुम देख पाते हो ?

जिज्ञासु -नहीं।

श्री ठाकुरजी -उन्होंने विभिन्न प्रकार के मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण के पथ दर्शाए हैं। योग प्रक्रिया एवं प्रलय के द्वारा भी पथ रखा है। अतः साधारण जीव सीमित मुद्रा में यह जान नहीं सकता कि, कौन सी मुक्ति एवं मोक्ष के द्वार होते हुए जीव का उद्धार होता है। कोई दान करके मुक्ति, मोक्ष और निर्वाण के पथ पर आगे बढ़ जाता है, तो कोई ध्यान करके। अतः भगवान् विश्वगुरु के

द्वारा एक-एक अंग अवतरित कर, उन्हें ज्ञान एवं तत्त्व प्राप्ति कराकर सृष्टि में भिन्न-भिन्न प्रकार की मुक्ति एवं मोक्ष के पथ दर्शाते हैं। अतः श्रीठाकुर निगमानन्द परमहंसजी की जो सम्मिलनी हुई थी, उसमें सन्देह करने की कोई आवश्यकता नहीं।

स्मरण रहे, सर्वप्रथम प्रलय से ही सृष्टि का आरम्भ है और उसी प्रलय में ही उसका विलय है। ब्रह्माण्ड चक्र में भी देखें तो यही है। पिण्ड में भी तुम देखो, उसी प्रलय से ही आरम्भ है और उसी प्रलय में ही शेष है। प्रलय उन्हीं (स्रष्टा) की इच्छानुसार ही होता है।

जिज्ञासु - प्रभु ! मन में और एक प्रश्न उद्रेक हो रहा है। जिन्हें हम अव्यक्त अथवा भगवान् कहते हैं, क्या उनकी भी कोई इच्छा है ?

उदाहरणतः - चुंबक के चुंबकत्व को हम स्वीकार करते हैं, परन्तु चुंबक की कोई इच्छा भी है, हम उसको स्वीकार नहीं करते। जल के जलत्व को हम स्वीकार करते हैं, परन्तु जल में जलदेवता की कोई इच्छा भी है, हम उसको स्वीकार नहीं करते। अग्नि की दाहकता को हम स्वीकार करते हैं, परन्तु अग्नि की कोई इच्छा भी है, हम उसको स्वीकार नहीं करते। प्रकृति ने इस सृष्टि की रचना की है। प्रकृति के उपादान के कारणों को हम स्वीकार करते हैं, परन्तु प्रकृति के भीतर त्रिगुणमयी कोई इच्छा भी है, हम उसको स्वीकार नहीं करते। उसी प्रकार अव्यक्त, चैतन्य तत्त्व एवं परमतत्त्व को हम स्वीकार करते हैं, परन्तु उनके भीतर कोई इच्छा भी है, हम उसको स्वीकार नहीं करते।

इन सभी स्थानों पर इच्छा शक्ति है या नहीं, हम यह जान नहीं पाते। यदि अग्नि की कोई इच्छाशक्ति होती, तो वह हमें कदापि जलाकर नहीं मारती। हम उसे पुकारते तो वह जरूर सुनती। परन्तु वह सुन नहीं पाती। आपका अव्यक्त तत्त्व इस विषय पर क्या कहता है ?

श्रीठाकुरजी - अग्नि की दाहक शक्ति है। भगवान् ने इस दाहक शक्ति को 42 तत्त्व के माध्यम से धराधाम पर विकीर्ण किया है। तुम्हें ज्वर(बुखार) आना भी एक प्रकार की दाहक शक्ति है। ज्वर का उतरना भी एक प्रकार की दाहक शक्ति है। दीये का जलना भी एक प्रकार की दाहक शक्ति है और बुझना भी एक प्रकार की दाहक शक्ति है। बहु लोगों के एकत्रित होने से गर्मी पैदा होती है। यह गर्मी कैसे पैदा होती है ?

प्रत्येक निःश्वास और प्रश्वास से एक दहन शक्ति उत्पन्न होती है। वर्ण दयाल दाहक शक्ति सूक्ष्माकार में शरीर से उत्पन्न होने के कारण हमें गर्मी लगती है। वह भी अग्नि से निकलती है। वह हम देख नहीं पाते। परन्तु अनुभव कर पाते हैं। शरीर से पसीना निकलना तथा हवा का लगना हम अनुभव कर पाते हैं, परन्तु हमें वह दिखाई नहीं देता। दीये के जलने और उसकी शिखा की दहन प्रणाली को तुम अनुभव कर पाते हो।

साधारण जीव जब तक चैतन्यावस्था में उपनीत नहीं होता, तब तक अग्नि की दाहक क्रिया को जान नहीं सकता। जीव के चेतन होने से, अग्नि की दाहक शक्ति के 32 स्तर अथवा सोपान सप्तलोक के भेद तक अनुभूत होते हैं। जितने ज्ञानतत्त्व व विज्ञानतत्त्व हैं, उस

अनुभूति में वह सकल उसके चैतन्य के दृष्टिगोचर में आकर रहता है एवं भगवान् के निर्देश मिलने पर वह ज्ञान धराधाम पर वितरण करता है। अन्यथा उसी प्रकार चेतन रहकर उसके शरीर का विलय हो जाता है।

जिज्ञासु -हमने पुराणों एवं शास्त्रों में पढ़ा है, टेलीविज़न के माध्यम से दार्शनिकों ने दिखाया है कि, अव्यक्त पुरुष की अव्यक्त चेतना, प्रभु के कर स्पर्श से कुब्जा तत्क्षण दिव्य सुन्दरी में परिणत हो गयी। अतः अव्यक्त चेतना द्वारा क्या इस प्रकार की भौतिक क्रिया जो हमारे मन में है, कि हमें सहसा कुछ फल मिल जाता। क्या इस प्रकार की चेतना या विचारधारा अव्यक्त में कुछ है ?

जब कोई विदेश जाता है, तब लौटते समय वह अपने साथ कुछ लेकर आता है। जिससे प्रमाणित होता है कि, वह विदेश से आया है। उसी प्रकार जब आप अव्यक्त से आए हैं, तब आप हमारे लिए क्या-क्या लेकर आए हैं ?

श्रीठाकुरजी -इस सृष्टि में जितने फल-फूल तुम देख रहे हो, ये सब क्या उस अव्यक्त के नहीं हैं ?

जिज्ञासु -हाँ, हैं।

श्रीठाकुरजी -अव्यक्त में सूक्ष्म में था। स्थूल में धराधाम पर व्यक्त हुआ। व्यक्त होने के कारण वह सुन्दर दिखाई देता है। तुम जो कुछ भी देख रहे हो, सब उस अव्यक्त से ही व्यक्त हुआ है। यहाँ जितने सज्जन वृन्द उपस्थित हैं, सबके मुख, भाव और चालचलन भिन्न-भिन्न प्रकार के क्यों हैं ?

जिज्ञासु -हाँ। इस प्रकार के भिन्न-भिन्न क्यों हैं ?

श्रीठाकुरजी -क्या उनके भीतर उस ब्रह्म की सत्ता नहीं ?

जिज्ञासु -हाँ, है।

श्रीठाकुरजी -क्या हम उन्हें अवतारी नहीं कह सकते ? तुम्हारे भीतर उस ब्रह्म की सत्ता है। तुम भी उसी प्रकार नरशरीर का एक अवतार हो। तुम जो कह रहे हो कि, अव्यक्त से क्या लाए हो ? सृष्टि में उपलब्धि करने योग्य भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक वस्तुएँ हैं।

जिज्ञासु -यदि हम अव्यक्त के फल होते तो क्या दुःख, रोग व शोक भोग करते ? क्या हम रोते ? क्या हम विकारग्रस्त होते ? क्या हम आत्महत्या करने के लिए उद्यम करते ?

श्रीठाकुरजी -शरीर में विकार दिया गया है। तुम्हारा शरीर व्यक्त का शरीर है। वह अव्यक्त से आया है। जिस प्रकार कोठी बनाते समय एक ढाँचा खड़ा किया जाता है और कोठी बन जाने के पश्चात् उसको हटा दिया जाता है। सोने के आभूषण बनाते समय उसमें धातु मिश्रित किया जाता है। फलस्वरूप वह आभूषण दीर्घस्थायी रहता है। उसी प्रकार प्रकृति और माया के मिश्रित अंश के बिना शरीर के भीतर ब्रह्म की आधार शक्ति, चैतन्य की शक्ति, चित्त की शृणाल प्रक्रिया कार्य कर रही है, वह धारण नहीं कर सकती। विभ्रम हो जाएगा। जीव

ढल-मल अवस्था में रहेगा। इसीलिए विकारमय अंश शरीर में दिया गया है। रोग-शोक, सुख-दुःख इत्यादि दिए गए हैं। ये सब उन्हीं परम की इच्छानुसार शरीर में हैं। इन सबके भीतर उन्होंने अपना मङ्गल कार्य भी रखा है। कुछ दिन वस्त्र पहनने के पश्चात् वह मैला हो जाता है। साबुन की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार भगवान् एक शरीर को दीर्घ 60/70 वर्ष धरे दुःख व यन्त्रणाएँ भोग कराते हैं। जब हमारी दृष्टि पड़ती है, तब हमें दुःख होता है। वह शरीर बहु यन्त्रणाएँ भोग करता है। हम जीव की ओर लक्ष्य करते हैं। उस जीव के भीतर भी ब्रह्म की सत्ता है। वह भगवान् के इंगित से सुख-दुःख, रोग-शोक भोग करता है। भगवान् ने ये सब जीव के संस्कार के लिए दिया है। समाज में देखा होगा, शिशु जन्म लाभ करने के पश्चात् जन्म से मृत्यु पर्यन्त विकारमय भाव में जीवन अतिवाहित करता है। अन्यथा उसके औरस से जो संतान जन्म लेती है, वह भी दारिद्र्य में गति करती है। दारिद्र्य ही उसका संस्कार है। साधारण लोगों के यह समझने में सन्देह उत्पन्न हो जाएगा। पूर्व से महामनीषीगण इन अवस्थाओं के बारे में दर्शाकर गए हैं। जीव वह सहज से अनुभव करता है, भोगता है, तथापि धर्म के भीतर गति करते हुए जा नहीं पाता। जीव को यदि इन अवस्थाओं के बारे में वे समझाने जाएँगे, गति करने के लिए क्या उसकी इच्छा होगी ?

जिज्ञासु -नहीं होगी।

श्रीठाकुरजी-इसलिए धर्मसंस्थाओं एवं धर्मगुरुओं के प्रति तुम अविश्वास करने लगते हो। बहु निगम तत्त्व उनके चैतन्य में स्थान पाते हैं, अनुभव करते हैं। जीवजगत् के लिए जितना आवश्यक है, उतना ही वे दर्शाकर जाते हैं।

जिज्ञासु -मानव शरीर को श्रेष्ठ क्यों कहा गया है ?

श्रीठाकुरजी-मानव भगवत् का सान्निध्य लाभ कर पाता है। भगवत् का श्रवण, मनन और चिन्तन भी कर पाता है। इसलिए उन्हें श्रेष्ठ कहा जाता है।

जिज्ञासु -जो श्रेष्ठ है, क्या वह कभी रोग-शोक भोग करता है ? उज्ज्वलमय वस्तु को क्या कालिमा ग्रास कर सकती है ? क्या आलोक को अन्धकार ग्रास कर सकता है ? क्या दिव्य को अदिव्य ग्रास कर सकता है ? यदि हमारा शरीर श्रेष्ठ व दिव्य है, तब यह शरीर मरता है, दुःख व रोग भोग करता है। विकलांग (छोटा, कुब्जा, काना, पंगु) होकर कई जन्म होते हैं। ये भी तो मानव हैं। ये किस प्रकार श्रेष्ठ हुए ? हम कभी भी यह विवेचन नहीं करते कि, मानव शरीर श्रेष्ठ है। आपका गुरुवाद मानव शरीर को श्रेष्ठ कहता है। हमारा जीववाद कभी भी इसको ग्रहण नहीं करता।

श्रीठाकुरजी-मानव शरीर में दिव्यत्व प्राप्ति होने के पश्चात् ही उसे दिव्य कहा जाएगा। भिन्न-भिन्न प्रकार की अवस्थाओं के बारे में पूर्व से मनीषीगण भी दर्शा गए हैं। लोग, नर, मानव, पुरुष एवं अतिमानव की अवस्थाएँ दर्शा गए हैं। कौन-कौन सी अवस्थाओं के चैतन्य लेकर देह तत्त्व भाव, चैतन्य, बुद्धि और विवेक के चलन से धराधाम पर अवस्था भोग करता है, ये सब

मनीषीगण दर्शा गए हैं।

जिज्ञासु -तो आप यह कहना चाहते हैं कि, हम यहाँ जितने जन उपस्थित हैं, हम मनुष्य नहीं हैं, मानव नहीं हैं ? शास्त्र में है, **"मानव शरीर में दिव्यज्ञान। देख सन्तुष्ट भगवान्॥"**

श्रीठाकुरजी -शास्त्र कहता है, "मानव शरीर में दिव्यज्ञान"। साधारण जीव कर्मयोग के माध्यम से गुरु ग्रहण कर जब चैतन्य प्राप्त होता है, तब अपने पिण्ड में समस्त सूक्ष्मत्व भाव, चलन, हेतु प्रक्रिया अनुभव कर पाता है। जब पिण्ड में सप्तलोक एवं ब्रह्माण्ड में सप्तलोक उसके चैतन्यमानस में अनुभूत होता है, उस अवस्था को हम **"मानव"** कहते हैं।

जिज्ञासु -तो यहाँ जितने जन उपस्थित हैं, क्या वे मानव नहीं हैं ?

श्रीठाकुरजी -सबकी तुलना तुम कैसे कर देते हो। तुम्हारे भीतर भी उस ब्रह्म की सत्ता है, तुम्हें भी मानव कहा जाएगा।

जिज्ञासु -हमें भी मानव कहा जाएगा ?

श्रीठाकुरजी -तुम्हारा चैतन्य उदय होने से, तुम्हें भी मानव कहा जाएगा।

जिज्ञासु -यह चैतन्य इस प्रकार क्यों है ? किसी के भीतर पूर्ण चैतन्य तो किसी के भीतर तनिक भी नहीं। प्रभु! इस प्रकार तारतम्य करते हुए क्यों रखा है ? सबको देना चाहिए था। हम असुविधाओं के सम्मुख पड़ रहे हैं। इसके रहस्य तो हम समझ नहीं पा रहे।

श्रीठाकुरजी -वे यदि इस प्रकार के रहस्य नहीं रखते तो क्या आप यह प्रश्न पूछते ? भगवान् का ज्ञानतत्त्व यदि उन्हीं के निकट ठुल (एकत्रीभूत) होकर रह जाता, तो हम वह कदापि जान नहीं पाते। अतः वे अपनी इच्छानुसार जीव के रूप में आते हैं; गुरु भी बन कर आते हैं; कभी-कभी शिष्य बन कर भी आते हैं। अपनी सृष्टि की इच्छा से, वे मूर्ख बन कर आ सकते हैं; गुरु भी बन कर आ सकते हैं; उच्च श्रेणी के भक्त व शिष्य बन कर भी आ सकते हैं। इस प्रकार नहीं आएँगे तो उनकी लीला प्रकट कैसे होगी ?

लीला प्रकट करने के लिए वे दिव्य ज्ञान और दिव्य दृष्टि रखते हैं। जो जीव कर्मयोग करते हुए दिव्य ज्ञान व दिव्य दृष्टि प्राप्त करता है, वह उनकी लीलाओं का प्रकट होना समझ पाता है। जो समझ नहीं पाते, वे भगवान् को पक्ष (किनारा) कर देते हैं। भगवत् चिन्ताधारा, सत्भावना व सत्संग में योग देने से आसुरिक प्रवृत्तियों का दमन होकर सत्येन्द्रिय वृत्ति से सत् स्वभाव आ जाता है। फलस्वरूप हम मानव की अवस्था में पहुँच जाते हैं।

जिज्ञासु -वास्तव में हम मानव नहीं हैं ?

श्रीठाकुरजी -तुम अभी मानव नहीं हुए हो।

जिज्ञासु -तो फिर, हम सब कौन हैं ?

श्रीठाकुरजी - तुम्हारे भीतर अहङ्कार, ईर्ष्या, द्वेष, परश्रीकातरता इत्यादि प्रबल मात्रा में हैं। अतः तुम्हें मानव नहीं कहा जा सकता।

जिज्ञासु - तब हमें क्या कहा जाएगा ?

श्रीठाकुरजी - (स्मिति पूर्वक) तुम्हें "लोग" कहा जाएगा।

जिज्ञासु - "लोग"। "लोग" का चरित्र कैसा है ? तनिक बताने की कृपा करें।

श्रीठाकुरजी - समस्त पाशविक(पशु) प्रवृत्तियाँ यथा :- दूसरों की सत्ता विध्वंस करना, दूसरों को ईर्ष्यान्वित करना, दूसरों के धन लूटना इत्यादि "लोग" चरित्र के अन्तर्भुक्त हैं। इन प्रवृत्तियों का दमन होकर सत् चिन्ता, सत् बुद्धि तथा विवेक ज्ञान आने से, उस अवस्था को "मानव" कहा जाता है।

जिज्ञासु - जो दूसरों को विपर्यस्त करते हैं, उन्हें "लोग" कहा जाता है। प्रभु ! अब "नर" चरित्र के बारे में कृपया बतायें।

श्रीठाकुरजी - जितने स्तर हैं, सभी स्तरों में कुछ-न-कुछ विकारमय भाव रहता है। किसी के भीतर पूर्णमात्रा में रहता है तो किसी के भीतर आंशिक। "नर" का चरित्र अत्यधिक कुटिल स्तर का होता है। मुख पर मधुर वचन और अन्तर् में प्रबल कुटिल भाव होता है। समाज में देखा होगा। "लोग" के चरित्र में भी कुटिल भाव आंशिक मात्रा में होता है। इस कुटिल भाव को स्थूल चेत में स्थान मिलता है। यह कुटिल भाव 64 प्रकार के पथ होते हुए गति करता है। विचक्षण भाव और अस्थिर भाव। ये भाव सत् गति वाले लोगों में हैं और असत् गति वाले लोगों में भी हैं। उसकी अवस्था देहतत्त्व में रहती है। "नर" की अवस्था ... . इसकी व्याख्या करने से सबके मन को आघात पहुँचेगा।

जिज्ञासु - हाँ। आघात पहुँचेगा। सबको दुःख होगा। अपनी स्थित प्रकृति यदि बाहर प्रकट हो जाती है, तब आघात अवश्य पहुँचेगा। वैसे तो हम यह नहीं जानते, तथापि... ....

श्रीठाकुरजी - सृष्टि की स्थित प्रकृति सैद्धांतिक है। तुम्हारे साथ एक नीति का और दूसरे के साथ अन्य एक नीति का प्रयोग कर देंगे। उभयों के मध्य कलह का सूत्रपात कर देंगे। तुम्हारा यह सोचना आवश्यक नहीं कि, यह नारदीय प्रकृति है। 108 प्रकार की नारदीय प्रकृति सत् आचरण के माध्यम से गति करती है। यह नारदीय प्रकृति सृष्टि के मङ्गल विधान के उद्देश्य से है। परन्तु इनकी प्रकृति को नारदीय प्रकृति नहीं कहा जाएगा। इसे कुटिल नीति कहा जाएगा। उभयों के मध्य संघर्ष लगा कर स्वयं छिप जाएँगे। उभयों के ईर्ष्यान्वित भाव तृतीय व्यक्ति के सामने आलोचना करेंगे। ये सब "नर" चरित्र के अन्तर्भुक्त हैं।

जिज्ञासु - यह जो नर चरित्र है, क्या इसका शोधन हो सकता है ?

श्रीठाकुरजी - हाँ। शोधन क्रिया हो सकती है।

जिज्ञासु -यदि वह स्वयं चाहे तो, क्या यह शोधन क्रिया कर सकता है ?

श्रीठाकुरजी-माध्यम के द्वारा एवं स्वयं चाहे तो भी यह शोधन क्रिया हो सकती है। साधना प्रणाली के द्वारा शोधन हो जाता है। बिना साधना प्रणाली के शोधन नहीं हो सकता।

जिज्ञासु -प्रभु ! "मानव" के कौन-कौन से लक्षण हैं ?

श्रीठाकुरजी-"मानव" शक्ति संपन्न शिशु घर संसार में माता-पिता के साथ रहता है। उनकी सेवा करता है। गुरु और ब्राह्मण के प्रति श्रद्धा संपन्न होकर दान करता है। यज्ञ में दान करता है। 72 सात्त्विक भावों में से 32 भाव मानव में होते हैं। तुम यह किस प्रकार जान सकते हो ?

वह किसी के कूट चक्रान्त की बातें ग्रहण नहीं करेगा। नहीं सुनेगा। पास पड़ोस में कहीं झगड़ा चल रहा हो तो, वह उसमें भाग नहीं लेगा। किसी भी दुष्ट प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के साथ वह साथी नहीं होगा। वह दूर दृष्टि एवं धीर-स्थिर संपन्न होता है। उसकी स्थूल बुद्धि तथा स्थूल चित्त भी स्थिर होता है। घर संसार में अपनी स्त्री अथवा संतान-संतति के प्रति किसी भी बुद्धि का वह प्रयोग करता है तो, वह उसका सफल हो जाया करता है। उसकी अचेतन क्रिया के भीतर समस्त उद्दिष्ट बुद्धि गति करती है। उससे परामर्श माँगने पर वह जो बुद्धि दान करता है, वह भी उसका सफल हो जाया करता है। समाज में इस प्रकार के बहु मानव हैं।

उसके अन्तः में भगवत् चिन्ताधारा रही होती है। वह दूर श्रवण तथा भगवत् श्रुति ज्ञान करता है। उसका अन्तःजगत् मितभाषी और बाह्यजगत् भी मितभाषी होता है। अन्तःकरण में भगवान् के प्रति वह प्रगाढ़ भक्ति एवं विश्वास रखता है। किसी भी साधु, वैष्णव और संन्यासी को देखता है तो, वह भक्तिपूत होकर प्रणाम निवेदन करता है। उनके पीछे-पीछे दौड़ जाता है और उनसे गुहार करता है, मेरे शरीर में किस प्रकार पवित्र भाव रहे, मुझे ज्ञान दो इत्यादि, इत्यादि...। वह कभी विषय सम्बन्धी धन नहीं माँगता। ये सभी मानव के लक्षण हैं।

वह गुरु ग्रहण कर, उनसे मन्त्र दीक्षा लेकर सुबह-शाम नित्य नैमित्तिक भाव से गृहस्थ धर्म के जितने नियमित कर्म हैं, वह समस्त कर्म संपादित करता है। व्यक्ति स्वयं धर्म संपन्न होने के साथ-साथ दंपती तथा परिवार वर्ग को आध्यात्मिक पथ पर गति कराता है। ये सब उसके गृहस्थ धर्म के नियम हैं।

जिज्ञासु -उनकी बुद्धि कभी विपर्यस्त होती है ?

श्रीठाकुरजी-मानव की बुद्धि विपर्यस्त नहीं है।

जिज्ञासु -प्रभु ! "लोग", "नर" एवं "मानव" चरित्र के उपरांत "पुरुष" चरित्र के बारे में कृपा करते हुए समझायें।

श्रीठाकुरजी-सज्जन वृन्द ! हिरण्यगर्भ के शकटक ब्रह्म मण्डल में 84 स्तर हैं। इन स्तरों का वर्ण नीला है।

इन स्तरों से पुरुष शक्ति संपन्न आत्मा (ब्रह्म) धराधाम पर आती है। वह आत्मा माता-पिता के रजवीर्य से सृष्टि होकर जरायु में स्थान पाती है एवं जरायु की श्रृति कर्णाल नाड़ी होते हुए अदृश्याकार में भाव संग्रह करती है। जरायु में पिण्ड का गठन भी करती है। क्रमानुयायी शरीर वर्द्धित होता है। उसका वर्द्धित होना माँ जान पाती है।

वह पुरुष शक्ति संपन्न संतान भूमिष्ठ होने के पश्चात् प्रत्येक पूर्णिमा, संक्रान्ति, अमावस्या में ढाई घण्टे निद्राग्रस्त रहता है। तदनंतर क्रमानुयायी शरीर बलिष्ठ होकर गति करता है। उस समय चैतन्य - शृण चैतन्य भृंग साधारण जीव का सुप्तावस्था में होता है। पुरुष शक्ति संपन्न शिशु का चैतन्य गैरिक वर्ण का होता है और उसकी आकृति सेम के बीज की आकृति जैसी हुई होती है।

शिशु जब घुटनों के बल चलता है, उस अवस्था में वह धीरे-धीरे माँ के निकट चला जाता है। माँ जब माया प्रसन्न होकर पुरुष शक्ति संपन्न शिशु को गोद में उठाने के लिए आगे बढ़ती है, तब उस शिशु की सत् प्रकृति माँ से दूर करते हुए ले आती है। अपितु साधारण व मोहाच्छन्न शिशु माँ के बुलाने पर स्नेह पाने के लिए आग्रह सहित निकट चला जाता है। माँ से वह स्तनपान करता है। परन्तु पुरुषाकार संपन्न शिशु माँ के निकट स्तनपान करने नहीं जाता। वह दिन भर में एक बार स्तनपान करता है। चैतन्य के चौबीस द्वार तथा सत्येन्द्रिय वृत्ति पुरुषाकार शक्ति संपन्न शिशु की सतेजावस्था में होती है। उसकी बिजेन्द्रिय वृत्ति सुप्तावस्था में होती है। साधारण जीव बिजेन्द्रिय वृत्ति से विकार शब्द बार-बार ग्रहण करता है। परन्तु पुरुषाकार शक्ति संपन्न शिशु का विकार बंद रहता है।

सृष्टि के सौर जगत् में जितने विज्ञानतत्त्व व ज्ञानतत्त्व हैं, वह ब्रह्म शकाटिक मण्डल से ठुल(एकत्रीभूत) हुआ होता है। पुरुषाकार शिशु अथवा उसका पिण्ड जब 5 वर्ष का हो जाता है, उस समय हिरण्यगर्भ से लाए हुए ब्रह्म शकाटिक ज्ञान द्वारा उसके मस्तिष्क में हेतु और चैतन्य गोलाकार में धारण करते हैं। जब हेतु और चैतन्य परिस्फुट होता है, तब पुरुषाकार संपन्न शिशु धीरे-धीरे घर में साधु-संतों की साकार मूर्ति हो तो, द्वार पर यदि साधु-संत आते हैं या कहीं साकार मूर्ति देखता है तो, वह आग्रह पूर्वक प्रणाम करता है। उसके 5 वर्ष से ये सभी लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

हिरण्यगर्भ का वर्ण सम्पूर्ण हरिद्रा है। हिरण्यगर्भ में जो शृण श्रुत्तारी मण्डल है, उसका वर्ण गैरिक है। इस मण्डल में ज्योतिष विद्या गैरिक वर्ण में है। यह विद्या इस मर्त्यधाम में महात्माओं के द्वारा विकीर्ण हुई है। वह पुरुषाकार शिशु जब धीरे-धीरे बढ़ने लगता है, 7 वर्ष के समय उसे यह तत्त्वज्ञान लाभ होता है। इसके अतिरिक्त उसके निकट पिण्डतत्त्व का ज्ञान भी होता है। षट्चक्र भेद के पिण्डतत्त्व ज्ञान की रूता कुण्डलिनी की जाग्रतावस्था के 64 ज्ञान स्तर उसके चेत में सम्पूर्णतया आ जाते हैं। 7 वर्ष के वयः में शिशु बिना मोहाच्छन्न हुए, वैराग्य मार्ग की ओर गति करता है।

भगवान् की सृष्टि में 32 प्रकार के वैराग्य मार्ग हैं। 7 वर्ष के वयः में जब वैराग्य की अनुभूति होती है, तब माँ जो भी द्रव्य देती है, वह उसे ग्रहण नहीं करता। स्वादिष्ट खाद्य देने से भी वह ग्रहण नहीं करता। विद्याध्ययन हेतु विद्यालय भेजते हैं तो वह कहता है कि, पढ़कर आया हूँ। माता-पिता यह जान नहीं पाते कि, वह क्या पढ़कर आया है। साधारण जीव विद्या ग्रहण करता है, अपितु पुरुष शक्ति संपन्न शिशु वह ग्रहण नहीं करता। रूक्ताक्त हेतु हमारे पिण्ड में है। पुरुष शक्ति शिशु का रूक्ताक्त हेतु और अभितुक्त चैतन्य जब योग हो जाते हैं, तब शिशु समाधि अवस्था प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में कर्मयोगी यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, संप्रदायिक व अभिसंप्रदायिक समाधि, निर्विकल्प व अभिनिर्विकल्प समाधि इत्यादि स्तर अतिक्रम करने के पश्चात् भगवत् प्राप्ति एवं ब्रह्मत्व प्राप्ति करते हैं। परन्तु पुरुष शक्ति संपन्न शिशु धराधाम में क्रियायोग नहीं करता।

पुरुष शक्ति संपन्न शिशु का पिण्ड जब वर्द्धित होता जाता है, उसका हेतु और चैतन्य भी जाग्रतावस्था की ओर गति करने लगते हैं। इस गति के समय वह शास्त्र एवं पुराण का पाठ करता है। जो शास्त्र एवं पुराण तुम पुस्तिकाओं से अध्ययन करते हो, वह अपने श्रुतिपट से स्वतः कहता है। यह ज्ञान श्रुतिपट में किस प्रकार रहता है ? परा, पश्यन्ति, मध्यमा एवं वैखारी। भगवान् की सृष्टि में वैखारीय श्रुति के 82 स्तर हैं। पुरुषाकार शिशु 32 स्तर तक ज्ञान की उपलब्धि कर पाता है। यह उपलब्धि करते समय सौर मण्डलीय ज्ञान एवं ज्योतिष शास्त्र ज्ञान भेद करते हुए आया होता है। वह शिशु सृष्टि के वृक्ष, लता, पहाड़, जंगल इत्यादि की सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्माओं की क्रिया और उनकी लीलाओं को अनुभव कर जनजगत् को अवगत कराता है।

महापुरुषों एवं धर्मगुरुओं की जीवनियों में 5 वर्ष अथवा 7 वर्ष अथवा 12 वर्ष में गृहत्याग करने की बात तो पढ़ी होगी। यह स्वतः किस प्रकार होता है ? इस मण्डल से जो शिशु आए होंगे, उनकी स्वयंचालित क्रिया स्वयं स्रष्टा सृष्टि करते हैं। साधारण शिशु तो मोहाच्छन्न है। इसलिए वह गृहत्याग नहीं कर पाता और माता-पिता को छोड़ नहीं पाता।

पुरुषाकार शिशु वह ज्ञान अधिक परिस्फुट करने के लिए भ्रमण करता है। इस भ्रमण काल में भगवान् उसकी परीक्षा लेते हैं। यह परीक्षा उसको पुनः कसौटी पर आगे बढ़ाते हुए ले चलती है। फलस्वरूप उसका ज्ञान परिपक्व अवस्था की ओर गति करता है। यदि शरीर को यन्त्रणाएँ नहीं मिलेंगी, तब वह भली-भाँति चतुर नहीं हो सकेगा। इसलिए भगवान् उसकी परीक्षा लेते हैं। इसी प्रकार वैराग्य मार्ग पर वह अग्रसर होता है। वैराग्य मार्ग पर कुछ दिन भ्रमण करने के उपरांत वह पूर्णांग सिद्धावस्था में पहुँचता है।

इस सिद्ध के 72 सोपान हैं। पुरुषाकार शक्ति संपन्न शिशु 24 सोपान तक इस जन्म में स्वतः सिद्ध लाभ करता है। यह 24 सोपान अतिक्रम करने के पश्चात् ब्रह्म के साथ पूर्णांग योग

होकर रहता है। इस पूर्णांग योगावस्था में जीवब्रह्म 24 घण्टे तक परमब्रह्म के साथ योग होकर रहता है। योगी की योगनिद्रा सुनी होगी। यह शिशु योगनिद्रावस्था में समस्त वैवर्त्तिक क्रिया, विभुभुसिद्धिक ज्ञान सम्पूर्णतया उपलब्धि करता है। फलस्वरूप सृष्टि का चलन किस प्रकार हो रहा है, स्रष्टा किस प्रकार सृष्टि को नियन्त्रित करते हैं, ये समस्त वह अपने पिण्ड में अनुभूत करता है। इस अनुभूत क्रिया की लीला के समय शिशु के मुखमण्डल का वर्ण लाल हुआ होता है। ब्रह्म के तेज के कारण वह लाल वर्ण हुआ होता है। जब शिशु ब्रह्मत्व प्राप्ति की उपलब्धि करता है, तब वह तेज सम्पूर्ण मुखमण्डल को आच्छादित करता है। आच्छादित करते समय शिशु बाह्यज्ञान का विषय भूल जाता है। सर्वदा उसका मन ज्ञानतत्त्व और विज्ञानतत्त्व पर रहता है। स्रष्टा के इंगितानुसार धराधाम पर उसके द्वारा जो कार्य होने हैं, वह समस्त कार्य संपादित कर देहत्याग करता है। ये सब पुरुष शक्ति संपन्न शिशु के लक्षण हैं।

जिज्ञासु -प्रभु ! हम सब तो मनुष्यों की भाँति दिखाई देते हैं। हमारे मध्य "लोग", "नर", "मानव", "पुरुष" और "अतिमानव", इस प्रकार के पृथक्करण क्यों किए गए हैं ? जबकि सबके भीतर वही बुद्धि और पच्चीस (25) प्रकृतियाँ कार्य कर रही हैं। कोई "लोग" है तो कोई "नर" और कोई "मानव" है तो कोई "पुरुष"। इस प्रकार का प्रभेद क्यों है ?

श्रीठाकुरजी -पच्चीस(25) प्रकृतियाँ सबके भीतर हैं। "लोग" के भीतर भी वही पच्चीस (25) प्रकृतियाँ हैं। मुहूर्त के लिए उसके मुख से सत् बातें निकलती हैं। उसके भीतर सत् प्रकृति, सत् बुद्धि आती है और वह विवेकी भी बन पाता है। परन्तु बहु परिमाण में नहीं। "मानव" में सात्त्विक वृत्ति के भाव एवं विवेक बहुल दिखाई देते हैं। हमारे भीतर सूक्ष्म, स्थूल एवं कारण विवेक भी है। वहाँ तक हम जा नहीं सकते। सूक्ष्म विवेक से स्थूल विवेक तक जो नीति-नियम धर्मगुरु बताते हैं, वह उनको दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करता है। स्रष्टा की बुद्धि और विवेक को लेकर इस खेल की रचना हुई है। उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार की बुद्धि एवं विवेक दिया है। भिन्न बुद्धि एवं विवेक संपन्न वाले व्यक्ति में उसके पिण्ड, इन्द्रियाँ, भाव और क्रम वैवर्त्तिक क्रिया की लीलानुयायी चालचलन, बातचीत, दृष्टि, भंगी इत्यादि लक्षण दिखाई देते हैं। वे (स्रष्टा) अपनी सृष्टि में अपनी लीला कर रहे हैं। इससे अधिक और कुछ मत पूछो।

जिज्ञासु -प्रभु ! यह जो "लोग" चरित्र है, क्या यह परिवर्तित होकर "मानव" चरित्र अथवा "दिव्य" चरित्र में परिणत हो सकता है ?

श्रीठाकुरजी -हाँ, परिणत हो सकता है। इसी प्रकार सत्संग का अनुसरण, सत् श्रवण, सत् दृष्टि की क्रिया इत्यादि देखने से उसका परिवर्तन होगा।

जिज्ञासु -उसकी प्रकृति व प्रवृत्ति भिन्न प्रकार होने के कारण वह इसके भीतर प्रवेश नहीं कर पाएगा। अतः उसके लिए और कोई विचारधारा आप रखते हैं ?

श्रीठाकुरजी -निश्चित रूप से प्रवेश कर सकता है। भगवत् प्रेमी हो सकता है। धर्मपथ पर आ सकता है।

असत् बातें नहीं आएँगी। सत् चैतन्य, सत् चिन्ताधारा, सत् पथ प्रदर्शक भाव वह परिदर्शन कराएगा। यह "अतिमानव" स्तर है।

जिज्ञासु -प्रभु ! यह "लोग" चरित्र हमारे समाज के लिए विपद उत्पन्न कर रहा है। यदि उनका शोधन हो जाता, तो समाज से कुछ मात्रा में दृष्कृति का विनाश हो जाता। क्या उनका शोधन हो सकता है ?

श्रीठाकुरजी -शोधन के पथ हैं। शोधन होकर वे "मानव", "पुरुष" तथा "अतिमानव" स्तर तक जा सकते हैं।

जिज्ञासु -मानव जीवन का चरम लक्ष्य क्या है ?

श्रीठाकुरजी -भगवत् चिन्ताधारा, भगवत् का सान्निध्य लाभ करना, भगवत् प्रेमी होना इत्यादि मानव जीवन के चरम लक्ष्य हैं।

जिज्ञासु -मनुष्य के अन्तः में यह लक्ष्य प्राप्त करने की क्षुधा जितनी मात्रा में नहीं, उसके अन्तः में रहे अभाव को दूर करने की क्षुधा उससे अधिक मात्रा में है। गुरुवाद का लक्ष्य भगवत् प्राप्ति है, अपितु मनुष्य का लक्ष्य अपने अभावों को दूर करना है। यह जो द्विविध लक्ष्य हैं, इसमें गति करना हम मनुष्यों के पक्ष में बहु कष्ट साध्य है।

श्रीठाकुरजी -भगवत् का सान्निध्य लाभ करने की जो बाह्यिक क्रियाएँ हैं, वह गृहस्थ कर्मों में जो करता आ रहा होगा, उसको ऐश्वर्य प्राप्त हो जाएगा। पूर्व जन्मों से वह कुछ-कुछ करता आ रहा होगा, तदनंतर पुनः भूमिष्ठ लाभ करेगा। उसका शरीर क्रमानुयायी वर्द्धित होकर उसको ऐश्वर्य प्राप्त कराएगा।

जिज्ञासु -यह सत् कर्म करते-करते यदि ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है, तो वह उसके बंधन का कारण बनेगा ?

श्रीठाकुरजी -पहले से बहु महामनीषीगण एवं गुरु भी बता कर गए हैं। वास्तव में जब कोई परमार्थी जीवन ग्रहण करता है, तब केवल जीवित रहने की ओर ही लक्ष्य देकर वह आगे बढ़ेगा।

जिज्ञासु -भगवत् प्राप्ति को अपना लक्ष्य बनाने से मनुष्य शान्ति लाभ कर सकेगा ?

श्रीठाकुरजी -जीवन्मुक्त होगा।

जिज्ञासु -वैषयिक दुःख भोगना नहीं पड़ेगा ?

श्रीठाकुरजी -पहले से गृहस्थ धर्म में ये समस्त कर्म नहीं करने के कारण वैषयिक दुःख भोग करता है। दारिद्र्य योनि में जन्म लेता है। अतः भगवत् चिन्ताधारा, भगवत् सेवा इत्यादि कर्म गृहस्थ धर्म में यदि करता आ रहा होगा, तब जन्मांतर वाद में ऐश्वर्य के साथ-साथ सुचिन्ताधारा भी प्राप्त होगी।

जिज्ञासु -प्रभु ! वर्तमान हम जिस विषय जंजाल में हैं, उसमें ये समस्त सत् कर्म करना क्या सम्भव है?

श्रीठाकुरजी - विषय जंजाल में रह कर जोर देकर करना पड़ेगा। मन में दृढ़ता लानी पड़ेगी। मेरे भीतर धर्मकथा सुनने की इच्छा नहीं होती, मैं जबरदस्ती दृढ़ता लाऊँगा। यदि तुम्हारा पुत्र विद्यालय जाना नहीं चाहता, तब तुम क्या करते हो ? उसे जोर जबरदस्ती समझा-बुझा कर विद्यालय भेजते हो। अतः यह पथ भी वैसा ही है।

जिज्ञासु - सत्संग को मानसिक महोत्सव क्यों कहा गया है ?

श्रीठाकुरजी - स्थूल मानव का मानस किस दिशा में रहता है ?

जिज्ञासु - सर्वदा कल्याण की दिशा में रहता है।

श्रीठाकुरजी - स्थूल मानव का मानसिक महोत्सव। मानस में चौतारिक एवं विवृत्तिक महोत्सव हैं। महोत्सव तुम्हारा शब्द नहीं, यह शून्य शब्द है। विश्वामित्र, वसिष्ठ, दुर्वासा इत्यादि चैतन्यजगत् में सत्संग के महोत्सव ग्रहण करते थे। मानसपट में उसका आस्वादन प्राप्त करते थे। तुम जो महोत्सव करते हो, उसमें सुकार्य एवं कुकार्य रहते हैं। उनके महोत्सव में केवल सुसंपन्न क्रियाएँ एवं जगत् के लिए सुचिन्ताएँ होती थीं। एक योगी प्रथमावस्था में ब्रह्मत्व की प्राप्ति के लिए खोजते हुए भटकता है। जब पहुँच जाता है, तब और नहीं खोजता। प्राप्त कर लेने के पश्चात् जगत् कल्याण की दिशा में वह व्यस्त रहता है। जगत् के कल्याण में वह ज्ञान वितरण करता है। जगत् को वह चेतना देता है। योगी जब ज्ञान की अवस्था में पहुँच जाता है, उस अवस्था में 72 महोत्सवों के गुणों से 72 आलोक उसके मानसपट में सर्वदा घूर्णन करते हैं। इस घूर्णन की अवस्था में उसका ओष्ठ देश स्मिति आकार में रहता है। देखा होगा, योगी वैराग्य मार्ग की अवस्था में सर्वदा हँसता रहता है। साधारण लोग उसका उपहास करते हैं। योगी इस प्रकार क्यों हँस रहा है ? वह किसके साथ हँसता है ? तुम्हारे साथ नहीं, वह परमपिता के साथ हँसता है। परमपिता के साथ सूक्ष्म कारण की लीलानुभूति में रह कर चैतन्य में गुर्तिक चित्त से जो रस निर्गत होता है, वह योगी की खेचर मुद्रा में आता है। सत्संग के महोत्सव में ज्ञान का स्वाद, विज्ञानतत्त्व का स्वाद, ब्रह्म ज्ञानतत्त्व का स्वाद वह ग्रहण करता है। यह ग्रहण करते समय चैतन्य में स्थित गुर्जरिक गुह्य केन्द्र में वह सब ठुल(एकत्रित) होता है और मानसपट में वह आनन्द अनुभव करता है। उसके निकट रहे पारिषदों को भी वह शान्ति पूर्वक आगे ले जाता है। सत्संग के महोत्सव के भाव, भाव की लीला इत्यादि शिष्यों के सम्मुख प्रतिपादित करता है। इसको सत्संग का महोत्सव कहा जाता है। नित्य सिद्ध साधु तथा देवताओं का यह महोत्सव है। (स्मिति पूर्वक) तुम तो जानते हो, हमारा महोत्सव तो यहाँ चल रहा है...

जिज्ञासु - गृहस्थ धर्म का पालन किस प्रकार किया जाता है ?

श्रीठाकुरजी - मानव धर्म में गृहस्थ धर्म आता है। व्यक्ति व सहधर्मिणी का धर्म परायण होना, पंचयज्ञ करना इत्यादि गृहस्थ धर्म में आते हैं। गृहिणी यदि सत् मार्ग की होगी, तो वह अपने स्वामी को सुचारु रूप से गृहस्थ धर्म में ला सकती है। पिता सत् मार्ग पर जा रहे होंगे और माताएँ

धर्मपथ पर विरोधाचरण करती होंगी। अतः सुगृहिणी के बिना गृहस्थ धर्म शान्ति व सुचारु रूप से चल नहीं सकता। वर्तमान समाज में यह देखने को मिलता है कि, स्वामी यदि सात्त्विक मनोवृत्ति लिए धर्मपथ पर गति करता है और उसकी पत्नी क्रूर अथवा दुष्ट चरित्र की है, तब वह धर्मपथ पर स्वामी का गतिरोध करती है। पत्नी यदि सात्त्विक मनोवृत्ति संपन्न है और उसका स्वामी दुष्ट चरित्र का है, तब वह धर्मपथ पर पत्नी का गतिरोध करता है। वर्तमान कलि संस्कृति में यह बहुतायत दिखाई दे रहा है। माताओं का मन धर्मपथ की ओर बढ़ना बहुत ही जटिल है। इसलिए माताओं से मेरा विनम्र अनुरोध है, गृहस्थ धर्म में शान्ति और सुरक्षा के लिए वही सम्पूर्ण रूप से उत्तरदायी हैं। इस घोर संकट से मुक्ति पानी है तो, पुरुष को धर्मपथ पर लाने में माताएँ ही सम्पूर्ण रूप से उत्तरदायी हैं। पुरुष यदि कुपथगामी हो जाता है, तब मताएँ धर्मपथ पर उसको सहजता से ला सकती हैं। परन्तु माताएँ यदि गतिरोध करेंगी, तब पुरुष धर्मपथ पर आ नहीं सकेगा।

माताओं की सम्पूर्ण उलट नीति है। स्वामी यदि धर्मपथ पर सहयोगी नहीं बनता है, तब वह झगड़ा करना आरम्भ कर देती हैं। सहधर्मिणी यदि धर्मपथ पर स्वामी की सहयोगी बनती है, तब वह गुरु ग्रहण कर सकता है, मन्दिर जा सकता है तथा सुचारु रूप से अपना घर चला सकता है। उभय यदि सहयोगी के आकार में परमार्थी भाव लाते हैं, तब गृहस्थ धर्म का पालन हो सकता है। उनकी संतान-संतति भी उनका चालचलन देखकर आध्यात्मिक पथ पर गति कर सकती हैं। माता-पिता का चालचलन यदि भिन्न प्रकार का होगा, तब संतान-संतति का चालचलन भी वैसा ही होगा।

जिज्ञासु -प्रभु ! वर्तमान यह व्यतिक्रम जो हो गया है, क्या उसका समाधान हो सकता है ?

श्रीठाकुरजी -व्यतिक्रम तो हो चुका है। जो बह चुका है, उसको तो वापिस नहीं लाया जा सकता।

जिज्ञासु -प्रायः प्रत्येक गृह में राक्षस के साथ देवता हैं। वह तो सर्वदा लड़ाई-झगड़ा करेंगे। उसका समाधान कौन करेगा ?

श्रीठाकुरजी -राक्षस में सात्त्विक प्रवृत्ति होती थी या नहीं ? होती थी। आसुरिक प्रवृत्तियों में सात्त्विक वृत्ति भी रहती थी। देवता पूर्णमात्रा में सात्त्विक प्रवृत्ति ग्रहण करता है। आसुरिक प्रवृत्ति की माँ उससे कम सात्त्विक प्रवृत्ति ग्रहण करती है। उनके मध्य बातचीत होकर सुसंपन्न हो सकते हैं।

जिज्ञासु -राक्षस और देवता में भला बातचीत हो सकती है ? क्या यह सम्भव है ? पुराणों तथा शास्त्रों में हम उनके मध्य युद्ध ही देखते आ रहे हैं। राक्षस का पतन और देवता का उत्थान। कलि के शेष समय पर यह जो परिस्थिति हो गयी है, उसके निमित्त आप कौन सा प्रतिकार विधान करने वाले हैं ?

श्रीठाकुरजी -गृहस्थ धर्म में स्वामी के 8 भाव स्त्री ग्रहण करती है एवं स्त्री के 12 भाव स्वामी ग्रहण करता है। सम्पूर्ण मात्रा में स्वामी और स्त्री के मध्य भाव का आदान-प्रदान नहीं हो पाता। उसी

प्रकार देवता और राक्षस की नीति भी वैसी ही है। प्रत्येक घर में इस प्रकार दिखाई देता है। भाव के आदान-प्रदान से प्रेम भाव का गठन होता है। क्वचित् झगड़ा करती है। फिर वह समाधान पर आ जाता है। उस समाधान के समय सर्वदा सात्त्विक भाव, सत् पात्र में दान, साधु तथा वैष्णवों के प्रति भक्तिभाव, सेवा इत्यादि की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

जिज्ञासु -केवल स्वामी और स्त्री तो गृहस्थ नहीं हैं। उसमें माता-पिता के साथ पुत्र-पुत्री का सम्बन्ध रहता है।

श्रीठाकुरजी-यह सम्बन्ध जन्म संस्कार में आता है। "माता-पिता के संयोग काल में। विहि ने जो लिखा कपाल में ॥" यदि पूर्णिमा, संक्रान्ति इत्यादि तिथियों में तुम्हारी संयोग प्रक्रिया होती है अथवा बीज की स्थापना होती है, तब शिशु उस चरित्र के भाव लेकर आता है। वर्णाश्रम तो लोप हो चुका है। वर्णाश्रम के धर्म में ये समस्त शिक्षा दी जाती थी। विवाह करने के पश्चात् कौन-कौन सी तिथियों में स्त्री सहवास करती है, जिसके फलस्वरूप एक सुसंतान उत्पन्न होगी। सुसंतान का भी उसी प्रकार चरित्रवान् होना आवश्यक है। वर्तमान वर्णाश्रम नहीं होने के कारण सहवास करने का विधि-विधान हमारे भीतर नहीं है। तदनुसार स्रष्टा का फल आ रहा है। उसमें साधु, बुद्धिमान, चोर, यहाँ तक कि काव्य कविता लिखने वाले संतान भी चले आते हैं।

जिज्ञासु -प्रभु ! इसका तो व्यतिक्रम हो चुका है। किसी उपाय से इसका समाधान हो सकता है ?

श्रीठाकुरजी-समाधान के पथ आ जाएँगे।

जिज्ञासु -क्या करने से महाविपत्ति में भी शरणागति मिलती है ?

श्रीठाकुरजी-नाम संकीर्तन, स्मरण, अर्चना, वन्दना इत्यादि महाविपत्ति काटती है। गुरु प्रदत्त मन्त्रचैतन्य मानस में करने से महाविपत्ति कट जाती है।

जिज्ञासु -महाविपत्ति के सामने वन्दना, अर्चना, प्रार्थना करना क्या सम्भव है ? जब बाढ़ आयी थी, तब वन्दना, अर्चना, प्रार्थना थोड़ी ही न दिखाई दे रही थी ? तब तो किस प्रकार अपना जीवन बचायें, यही सोच रहे थे।

श्रीठाकुरजी-महाविपत्ति पिण्डतत्त्व की भी है और ब्रह्माण्डतत्त्व की भी है। पिण्डतत्त्व की महाविपत्ति रोग, शोक, दुःख इत्यादि हैं। ब्रह्माण्डतत्त्व की महाविपत्ति क्रिया बाढ़, भूकंप, वात्या इत्यादि हैं। ब्रह्माण्डतत्त्व की महाविपत्ति क्रिया स्रष्टा के द्वारा प्रलय है। उस प्रलय चक्र में जो चला जाता है, उसकी ब्रह्मत्व प्राप्ति हो जाती है। विष्णु मण्डल में उसकी आत्मा पहुँच जाती है। पिण्डतत्त्व(दैहिक) की महाविपत्ति के लिए मानसिक महोत्सव, सत्संग महोत्सव, आध्यात्मिक महोत्सव, दर्शनेन्द्रिय महोत्सव, श्रवणेन्द्रिय महोत्सव इत्यादि हैं।

जिज्ञासु -द्वैत और अद्वैतवाद तत्त्व के प्रचार व प्रसार में "वसुधैव कुटुंबकम्" सद्भावना की आवश्यकता क्यों है ?

श्रीठाकुरजी - द्वैत और अद्वैतवाद। एकेश्वर वाद और माध्यम। कोई एकेश्वर वाद होते हुए जाता है तो कोई माध्यम होते हुए। एक है संसारी और दूसरा है संन्यासी। ये सब स्रष्टा की लीला है। सृष्टि के आरम्भ से द्वैत और अद्वैत हैं। यह द्वैत और अद्वैतवाद की क्रिया किस प्रकार से सृष्टि हुई है ?

हिरण्यगर्भ के रौष्टिक द्वार से द्वैत और अद्वैत के जितने नीति-नियम हैं, वह मुनि-ऋषियों के द्वारा धराधाम पर आए हैं। सत्ययुग में जब वर्णाश्रम धर्म था, उसमें आश्रम धर्म के जितने नियम एवं पद्धतियाँ हैं वह पारिषदों के द्वारा वितरण किया करते थे। द्वैत और अद्वैत के नीति-नियमों को दृढ़ता से रखते थे। उनके मध्य वादानुवाद नहीं था। कोई यह नहीं कहता था कि, मैं प्रत्यक्ष पहुँच जाऊँगा और तू माध्यम होते हुए पहुँच नहीं पाएगा अथवा मैं माध्यम होते हुए पहुँच जाऊँगा और तू प्रत्यक्ष पहुँच नहीं पाएगा। उनके मध्य इस प्रकार के वादानुवाद नहीं थे। वर्तमान जिस प्रकार के सांप्रदायिक वादानुवाद दिखाई दे रहे हैं, उनके मध्य यह देखने को नहीं मिलते थे।

जिज्ञासु - जो संन्यासी हैं, वे संसार का त्याग कर संन्यासी बनने के लिए कहते हैं। जो संसारी हैं, वे संन्यास का त्याग कर संसारी बनने के लिए कहते हैं। सृष्टि में वे एक ईश्वर को स्वीकार करते हैं और हम बहुतों को।

श्रीठाकुरजी - तुम बताओ कि, इस सृष्टि के आरम्भ से अब तक जितने महामनीषी और धर्मगुरु आए हैं, वर्तमान संख्याधिक कौन सा है ?

जिज्ञासु - संसारी द्वैत वाद।

श्रीठाकुरजी - संसारी। अतः स्रष्टा के वह नियम हैं। स्रष्टा की वह सूक्ष्म दृष्टि है। स्रष्टा का वह आशीष है। उनका द्वैत रहेगा और अद्वैत भी। उनकी इच्छानुसार यह हुआ है।

जिज्ञासु - भगवत् कृपा प्राप्ति के सहज व सरल उपाय क्या हैं ?

श्रीठाकुरजी - इस युग में हमारी प्राणशक्ति कहाँ है ?

जिज्ञासु - रक्त, मांस एवं चर्म में।

श्रीठाकुरजी - रक्त, मांस एवं चर्म में हमारी प्राणशक्ति है। रक्त, मांस एवं चर्म सुख जाने से हमारा जीवन चला जाएगा। उदर में आहार नहीं रहने से, भगवान् को बुला नहीं सकते। ध्यान में बैठते समय यदि मच्छर काटता है, उस समय मन मच्छर के निकट रह जाता है। इसलिए ध्यान में बैठ नहीं सकते। यह क्यों होता है ? चर्म में प्राणशक्ति रहने के कारण हमारा मन मच्छर या च्यूँटी के निकट रह जाता है या कोई बुला रहा है तो उस ओर चला जाता है। इस युग में केवल नाम ही सहज उपाय है। नाम का हम स्मरण करें। भली-भाँति क्रियायोग तो कर नहीं सकते। ध्यान में बैठ नहीं सकते। इसी कारण नाम का स्मरण ही श्रेष्ठ है।

जिज्ञासु - प्रभु ! नाम का स्मरण यदि श्रेष्ठ है, तब स्मरण तो मानसपट में होता है। हमारा मानस तो

द्वन्द्व पूर्ण है। फिर नाम का स्मरण किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

श्रीठाकुरजी - सबसे पहले नाम का उच्चारण मुख से करो। मुख से करते-करते वह मानस पट में जाएगा। चलते समय नाम ले सकते हो। जब खाली समय मिलता है, तब नाम का स्मरण कर सकते हो। सुबह-शाम नाम ले सकते हो। जब भी समय मिलता है, तब नाम ले सकते हो। जिसको गुरु प्रदत्त मन्त्र मिला होगा, वह उस मन्त्र का स्मरण कर सकता है।

जिज्ञासु - प्रभु ! हमारे पक्ष में नाम का स्मरण करना सम्भव नहीं हो पा रहा है। हम यह करने के लिए प्रयास करते हैं, परन्तु घर में जब झगड़ा आरम्भ हो जाता है, वह हमें विकृत कर देता है। फलस्वरूप नाम का स्मरण नहीं हो पाता।

श्रीठाकुरजी - घर में झगड़ा क्या 24 घण्टे चलता रहता है ?

जिज्ञासु - नहीं। परन्तु एक बार यदि आरम्भ हो जाए, तब वह 24 घण्टे तक खिंच जाता है। नाम का स्मरण करना हमारे लिए बहु कष्ट साध्य है। कुछ करके आगे बढ़ना हमारे लिए सम्भव नहीं। जो हमारे भाई-बहन यहाँ उपस्थित हैं, वह भी समझ पा रहे होंगे कि, नाम का स्मरण करना कितना कष्टसाध्य है।

श्रीठाकुरजी - तनिक भी कष्ट साध्य नहीं। मानसपट में नाम का स्मरण हो सकता है।

जिज्ञासु - इसका और कोई सहज व सरल उपाय है ?

श्रीठाकुरजी - यही तो सहज उपाय है। और कोई सहज उपाय नहीं ॥

परिचालक - क्षमावतार ठाकुर श्रीकेशवचन्द्रजी के श्रीमुख से सद्भावना के विषयों की सूची आप सभी ने सुनी। वर्तमान मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि, इच्छामय स्वेच्छा से समग्र मानव जाति तथा समग्र विश्ववासियों के उद्देश्य से एक सद्भावना सन्देश दें।

श्रीठाकुरजी - "सज्जन वृन्द ! गृहस्थ धर्म में रह कर नाम का स्मरण, नाम का उच्चारण, नाम का मन्त्रचैतन्य नितान्त आवश्यक है। योगी समाधि अवस्था में रह कर योग की जृतीक कुण्डलिनी क्रिया द्वारा मन्त्र को दीप्यमय करना भी आवश्यक है ॥"

वर्तमान ठाकुर श्रीश्रीश्री केशवचन्द्रजी के आदेशानुसार यह उद्यापन उत्सव सम्पूर्ण हुआ।

हे चरमपिता ! सदैव तुम्हारी जय हो ॥
हे क्षमावतार ! तुम्हारी मङ्गलमय इच्छा ही पूर्ण हो ॥

तुम वर्तमान महाप्रलय चक्र के द्वार पर खड़े हो। उस चक्र की धार से किसी का निस्तार नहीं। अतः और विलंब न करते हुए गुरुवाद मध्ये प्रवेश कर सद्गुरु पर आश्रित हो जाओ। अन्यथा ख़ैर नहीं ॥

— श्रीश्रीश्री ठाकुरजी